भगवद्-भक्त की दासता

श्रीलभक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी

[श्रील गुरुदेव जी ने 2 मार्च 1961, 18 फाल्गुन की गौर पूर्णिमा तिथि के दिन, 'श्री चैतन्य वाणी' नामक, एकमात्र पारमार्थिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। इसी पत्रिका के पंचम वर्ष में प्रवेश करने पर उनकी वन्दना करते हुए, मठाश्रित सेवकों के आत्यन्तिक मंगल के लिए, परमाराध्य श्रील गुरु महाराज जी ने एक उपदेशावली प्रेषित की। ये उपदेशावली निम्न प्रकार से है।]

“नव वर्ष में हम सकातर भाव से ‘श्री चैतन्य वाणी’ की वन्दना करते हैं। वे अपने कृपा-बल से हमारे चित्त को विशुद्ध करते हुए, हमें अपनी सेवा में आत्मनियोग करने का सौभाग्य प्रदान करें। ‘श्री चैतन्य वाणी’ सर्वत्र विश्व में अपने प्रभाव का विस्तार करते हुए, अपने वैभव को सुप्रतिष्ठित करें। ‘श्री चैतन्य वाणी’ के सेवक इस कंगाल के प्रति कृपा दृष्टिपात करें। सवैभव ‘श्री चैतन्य वाणी’ की जय हो।

सेवक बहुत प्रकार के होते हैं। उनमें से प्रीति द्वारा प्रवर्तित, कर्त्तव्यबोध से परिचालित एवं अपने ही प्राकृत स्वार्थ से उत्साहित सेवक ही मुख्य रूप से देखे जाते हैं। इनमें से तीसरे नम्बर वाले सेवक को शुद्ध-सेवक नहीं कहा जाता। कारण, यहाँ पर सेव्य व सेवक का सम्बन्ध हमेशा रहने वाला नहीं है। इस अवस्था में यदि उसका प्राकृत-स्वार्थ पूरा नहीं होगा तो उसकी सेवा बन्द हो जाएगी और सेव्य के साथ सम्बन्ध भी नहीं रहेगा। वास्तव में ये

बनिया-वृति की तरह कपटता मात्र है। यहाँ अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए अर्थात् अपना काम हासिल करने के लिए ही सेव्य को स्वीकार किया जाता है और यहाँ पर जो प्रयोजन है, वह भी अनित्य है; इसलिए सेव्य और सेवक का सम्बन्ध भी अनित्य है। अतः इस सेवा में नित्य-भूमिका का कोई अनुष्ठान नहीं है ये सब कर्मानुष्ठान ही है। सर्वप्रथम कही गयी सेवा (अर्थात् प्रीति द्वारा की जाने वाली सेवा) ही सुनिर्मला है व नित्य है। दूसरे

नम्बर पर कही गयी सेवा, अनुराग द्वारा परवर्तित न होने पर भी, कर्त्तव्य व नीति बोध से उत्पन्न होने के कारण व नित्य स्थितशील होने के कारण उसे सेवा कहा जा सकता है। अनुराग से उत्पन्न अथवा विधि या कर्त्तव्य-जनित सेवा ही सेवा-शब्द वाच्य है। इन्हें ही "राग भक्ति" व "विधि भक्ति" कहते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में सेवा नित्य है तथा सेव्य व सेवक का सम्बन्ध भी नित्य है। वैसे सेवक स्वतन्त्र होता है, परन्तु उसकी

स्वतंत्रता, सेव्य की प्रीति के परतन्त्र होने के कारण, कोई-कोई सेवक को परतन्त्र भी कहते हैं, प्रीति-सूत्र में बंधने पर भी, स्वतंत्रता का अभाव वहाँ नहीं है, हाँ, स्वेच्छाचारिता कहने से जो समझा जाता है, वह सेवक में नहीं होती। सेवक कोई लकड़ी की गुड़िया नहीं है। चित्त्-जगत् की वस्तु होने के कारण, सेवक की स्वतंत्रता नित्य स्वीकारणीय है; किन्तु ये स्वतंत्रता कभी भी सेव्य की सेवा के विरोध में प्रयुक्त नहीं होती। दो स्वतन्त्र वस्तुओं

के आपसी प्रीति-पूर्ण मिलन से ही ‘रस’ की उत्पत्ति होती है। उक्त ‘प्रेम-रस’, सेव्य व सेवक दोनों को प्रफुल्लित करता है तथा इसी कारण वे एक-दूसरे से विच्छेद को सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। कभी-कभी प्रेम की गाढ़ता को बढ़ाने के लिए विरह की आवश्यकता भी दिखाई देती है- ये ही ‘चिद्-विलास’ है। सेवक की बहुत तरह की सेवा देखी जाती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा कान्त भावों में कर्मशः सेवा की उत्कृष्टता होती है।

किसी भी भाव में सेवा-वृति का अभाव नहीं है। सेवा, बोधमयी व सुख-स्वरूपा होती है; अज्ञान रूपा नहीं होती। इसलिए भक्ति को आचार्य लोग 'ह्लादिनी-सार-समाश्लिष्ट सम्वित्वृति' कहते हैं।

भगवद्-भक्त अथवा सेवक की पदवी को प्राप्त करने के लिए श्रेष्ठ-श्रेष्ठ देवता भी इच्छा करते हैं। थोड़े से भाग्य से कोई भी भगवद्-भक्त नहीं कहला सकता। पूरे ब्रह्माण्ड में कोई भी पदवी, भगवद्-भक्त की पदवी के

बराबर नहीं हो सकती। जिनको भगवद्-तत्त्व का बोध नहीं है अर्थात् जो भगवद्-तत्त्व को नहीं जानते, वे भक्त की मर्यादा को भी नहीं जान सकते। अतः भगवद्-भक्त की अमर्यादा करने वाला, तत्त्वहीन व्यक्ति मूढ़ है और कुछ भी नहीं। अतः अपने सौभाग्य को अपने पैरों तले कुचलने वाला ही, भगवद्-सेवक को तुच्छ समझता है। सेवक, सेव्य को सेवा को तारतम्यता के अनुसार वश में कर लेता है। अनन्त ब्रह्माण्ड और उनमें

रहने वाले अनंत जीवों की सृष्टि व लय के मूल कारण जो भगवान् हैं, वे कितने महान् है। तमाम ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान व वैराग्य उनमें परिपूर्ण मात्रा में हैं। जो भगवान् समस्त तत्त्वों की खान हैं, वे भगवान् भी जिनके प्रेम के वशीभूत हो जाते हैं; वे भगवद्-विजयी 'भक्त लोग' कितने महान् हैं, जाना नहीं जा सकता। इस प्रकार देखा जाता है कि भगवद्-सेवक की मर्यादा ही ब्रह्मांड में सर्वोपरि है।

सेवक की समीपता, सेव्य की

समीपता दिलाती है। सेवक की सेवा, सेव्य की सेवा प्रदानकारी व सेव्य को वशीभूत कराने वाली होती है। इसलिए विवेकी लोग अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए, श्रीभगवद्-सेवक के आज्ञावाही दास, साधु-भक्त-संगी और सेवक होते हैं। भक्त अथवा दास की भक्ति व सिद्धि सुनिश्चित् है।

भगवद्-भक्त लोग भगवान् की अनेकों प्रकार की सेवाएँ प्रकट करते हैं एवं नाना प्रकार की योग्यता वाले, मंगल-प्रार्थी साधकों को उनकी योग्यता

के अनुसार, सेवा का सौभाग्य प्रदान करते हैं, वह सेवा ही धीरे-धीरे उनको श्री भगवद्-प्रेम प्राप्ति कराने का कारण बनती है। भगवद् भक्त की दासता ही श्रीभगवद्-प्राप्ति का मुख्य उपाय है।”

{शुद्ध-भक्त का संग ही भक्ति का हेतु एवं पोषक है।}

श्रीलपरमगुरुदेव